1965C On Proliferation of Edited Ancient Jain works

साहित्य-प्रकाशन-समस्या

पं. हीरालाल जी शास्त्री
ब्यावर

भारत में स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक धर्मावलम्बी समाजने अपने प्राचीन साहित्यके प्रकाशन में महत्त्व-पूर्ण सक्रियता दिखलाई है और आज तो वैदिक वाङ्मयके प्रमुख वेदों के आम्नाय-समागत शुद्धोच्चारित पाठोंके रिकार्ड भरे जानेका आयोजन किया जा रहा है, ताकि वर्तमानके वेद-पाठी ब्राह्मणोंकी वेद-ध्वनि और साम-गायन पद्धति भविष्यमें चिरकाल तक सुरक्षित रह सकें। ऐसे समयमें हमारा जैन समाज अपनी जिस अकर्मण्यता एवं निष्क्रियताका जो परिचय दे रहा है, वह सचमुच अत्यन्त खेदका विषय है। भारतीय ज्ञानपीठ, जीवराज ग्रन्थमाला, वर्णी ग्रन्थमाला और श्री महावीरजी का प्रकाशन यद्यपि चालू है, पर उनकी गति अतिमन्द है। जैन साहित्यकी विविध प्रकाशकों के साहित्यकी विशालता को देखते हुए तीव्र गतिसे उसके प्रकाशनकी आवश्यकता है।

विक्रय-समस्या

प्रकाशन संस्थाओंकी ओरसे कहा जाता है कि प्रकाशित साहित्यकी पर्याप्त मात्रामें बिक्री न होनेसे नवीन प्रकाशनकी गति अवरुद्ध हो जाती है और उनका यह कथन यथार्थ भी है, मगर इसके लिए दोषी कौन है? प्रथम दोषी तो प्रकाशन संस्थाएं ही हैं; जो कि अपने प्रकाशनोंका मूल्य बहुत अधिक रखती हैं। द्वितीय दोष विद्वान् लोगोंका है। यद्यपि उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे स्वयं ग्रन्थोंका प्रकाशित साहित्यको खरीद सकें, तथापि वे जहां रहते हैं; या जिन संस्थाओं में काम करते हैं, वहांकी समाजको एवं संस्थाके अधिकारियोंको साहित्यकी महत्ता बतलाकर मन्दिरों और शिक्षण संस्थाओंको तो प्रकाशित साहित्य मंगवा ही सकते हैं। इस समय उपस्थित विद्वज्जनोंसे मेरा सानुरोध निवेदन है कि आप जहां भी रहते हैं, कमसे कम वहांके मन्दिरोंको तो स्थायी ग्राहक बनवाकर प्रकाशित साहित्यको मंगवावें और स्वयं पढ़कर अन्य लोगोंमें उसके पठनकी रुचि जागरत करें।

प्रकाशन संस्थाओं का एकीकरण

(अप्रकाशित विपुल परिमाणमें विद्यमान) साहित्यके प्रकाशन के लिए यह अत्यावश्यक है कि प्रकाशन संस्थाओंका एकीकरण किया जाय, मगर जैन समाजकी गति-विधिको देखते हुए यह संभव नहीं दिखता। ऐसी दशामें सर्वविध-सम्पन्न भारतीय ज्ञानपीठ और श्री महावीरजी अतिशय-क्षेत्र-प्रकाशनोंके अधिकारियोंसे निवेदन है कि वे दोनोंही परस्पर में साहित्य प्रकाशनका बटवारा कर लेवें। संस्कृत-प्राकृत और अपभ्रंश ग्रन्थोंका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ करे और अप्रकाशित हिन्दी साहित्य के प्रकाशनका उत्तरदायित्व श्री महावीरजी अतिशयक्षेत्र कमेटी लेवे।

और उस साहित्य प्रथम प्रकाशित किया जाय, इसके विषय में पाठकों और प्रकाशकों में मत-भेद हो सकता है, इसके लिए मेरा सुझाव है कि इस सेमिनार में उपस्थित विद्वानों की एक बैठक इसी सेमिनार के इन्हीं दिनों हो और वह निर्णय करे कि किस प्रकार के साहित्य के प्रकाशन को प्राथमिकता दी जाय। चूंकि पच्चीसवीं शताब्दी महावीर निर्वाण महोत्सव कुछ समय बाद ही आने वाला है और सेमिनार के आयोजकों ने इस समय पर भ० महावीर के जीवन से सम्बद्ध साहित्य के प्रकाशन की आवश्यकता अनुभव कर इस पर आप लोगों से परामर्श चाहा है, अतः मैं इस समय इतना निवेदन कर देना उचित समझता हूं कि भ० महावीर के जीवन-चरित से सम्बद्ध प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में जितना भी प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य उपलब्ध है, उसका तत्तद् भाषाविदों के द्वारा आलोडन कर उसमें से नवनीत रूप सार संकलित किया जाय और उसे कुछ विशिष्ट विद्वानों की समिति आगामी वर्ष परीक्षण एवं चिन्तन-विनिमय के बाद अन्तिम रूप देवे। तथा उसका [illegible] भारतीय ही नहीं, अपितु समस्त विश्व की प्रमुख भाषाओं में अनुवाद करा कर उत्तम गेट-अप के साथ प्रकाशित किया जाय। भ० महावीर के इस जीवन-चरित में उनकी दिव्य देशना की अनुपम सूक्ति-मणियां भी संकलित हों और आज के युग में अत्यावश्यक सर्वधर्म-समन्वय-प्रस्थापन के लिए भ० महावीर एवं अन्य जैन तीर्थंकरों की अनुपम देन अनेकान्तवाद-स्याद्वाद, जीव-स्वातंत्र्य, कर्मवाद और अहिंसा के सार्वभौमिक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की आचार और विचार के क्षेत्र में महत्ता भी प्रकट की जाय। जहां तक ज्ञात हुआ है, जैन समाज के दोनों सम्प्रदाय एकता की बात करते हुए भी अपने-अपने दृष्टिकोणों से स्वतंत्र ग्रन्थ-प्रकाशन की सोच रहे हैं। पर यहां पर उपस्थित विद्वद्वर्ग से मेरा अनुरोध है कि मत-भेद वाली बातों को उक्त ग्रन्थ में स्थान ही न दिया जाय और भ० महावीर के सर्वमान्य सिद्धान्तों को ही उस ग्रन्थ में प्रकाशित किया जाय।

भगवान् महावीर के जीवन से संबंध रखने वाले दोनों सम्प्रदायों के आचार्यों एवं विद्वानों द्वारा प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध साहित्य के प्रकाशन के लिए दोनों सम्प्रदाय और विभिन्न भाषा-भाषी लोग स्वतंत्र हैं और स्वतंत्र रूप से ही उक्त सर्व प्रकार के साहित्य को प्रकाशित करने का आयोजन कर उनके प्रचार-हेतु भी प्रयत्न किया जाय।

सम्पादन-प्रकाशन की दिशा

वर्तमान में जिन बड़ी प्रकाशन संस्थाओं से जो साहित्य प्रकाशित हो रहा है उस सम्बन्ध में भी मेरे कुछ सुझाव हैं। प्रायः देखा जा रहा है कि उनसे पुराण-साहित्य के बड़े बड़े ग्रन्थों का मूल के साथ अनुवाद प्रकाशित हो रहा है, जब कि उनके इस प्रकार के प्रकाशन की आवश्यकता नहीं है। पुराणों एवं साहित्य के ग्रन्थों में शृंगारादि रसों का और स्त्रियों के नख-शिख-सौन्दर्य आदि का प्रचुर वर्णन है, उनको पढ़ने पर पाठक की कामुक वृत्ति ही जाग्रत होती है। यही कारण है कि स्वयं सम्पादक और अनुवादक अपने ग्रन्थ वक्तव्य में यह लिखने को बाध्य हुए हैं कि जहां सार्वजनिक शास्त्र-सभा में इन ग्रन्थों के उक्त स्थलों का वर्णन आवे-वहां वाचक या प्रवचनकर्ता उन्हें छोड़ दें, अर्थात् न बांचें। फिर जब ऐसे मूलग्रन्थ एक बार अन्यत्र से प्रकाशित हो गये हैं, तब तो उनका पुनः प्रकाशन और भी निरर्थक हो जाता है, खासकर उस दशा में जब कि प्रकाशन-संस्थाओं के अधिकारियों को यह सुनने में आता है कि इस विशाल काय वाले पुराण साहित्य का विक्रय नहीं हो रहा है। अतएव आज पुराण और काव्य-साहित्य के ग्रन्थों का शब्दशः अनुवाद आवश्यक नहीं है। जहां पर शृंगारादि रसों का प्रकरण आवे वहां पर उनका अनुवाद नहीं किया जाय। वैसे अधिक उत्तम तो यह रहे कि मूलग्रन्थ का मुद्रण अन्त में रहे और भावानुवाद प्रारंभ में दे दिया जाय। अथवा मूल प्रारम्भ में और भावानुवाद अन्त में दिया जाय।

ऐतिहासिक दृष्टि से काव्य-साहित्य एवं पुराणों का अध्ययन करने वाले विद्वानों को यह भली भांति विदित है कि सामन्त शाही के युग में रची गई उक्त प्रकार की रचनाओं में ही शृंगारादि रसों का प्राचुर्य दृष्टि गोचर होता है, क्योंकि उनका उद्देश्य राजा-महाराजा लोगों के मन का आकर्षण करना ही एकमात्र लक्ष्य था। प्राचीन पुराणों में केवल कथानकों की ही मुख्यता रहती थी, साहित्यिक छटा उनमें नाम मात्र को ही थी। किन्तु सामन्त युग के विद्वानों ने जब पुराणों में भी नव रसों के वर्णनों का सम्मिश्रण करना प्रारंभ कर उन्हें महापुराण या महाकाव्य बनाना प्रारंभ किया, तब से जैनाचार्यों ने भी उनका अनुसरण कर वैसी ही रचनाएं रचीं। अन्यथा इससे पूर्व जैन परम्परा में कथानक-रचनाओं में चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त ऋतु-वर्णन, नव रस वर्णन आदि का नाम निशान भी नहीं था। यही कारण है कि द्वादशांग वाणी के प्रत्येक अंग के पदों का प्रमाण जहां लाखों करोड़ों की संख्या में बतलाया गया है, वहां प्रथमानुयोग का प्रमाण केवल पांच हजार पद मात्र ही बतलाया गया है, जब कि प्रथमानुयोग में नव रस तो नहीं, वरन् ६३ शलाका पुरुषों का चरित्र-चित्रण समाविष्ट है।

महापुराण आदि के ऐसे ऋतु-वर्णन, प्रभात वर्णन, स्त्रियों के नख-शिख-सौन्दर्य वर्णनों को देखकर और उन्हें सर्वसाधारण जनों के लिए अनुपयोगी समझ कर परवर्ती जैनाचार्यों एवं विद्वानों ने उनका संक्षेपीकरण किया और कथानक मात्र बतानेवाले चरित ग्रन्थ बनाये। इस दिशा में सबसे अधिक रचनाएं आ० सकलकीर्ति की मिलती हैं, हालांकि उनमें से अधिकांश अभी तक अप्रकाशित ही हैं। इसलिए आज इस काल की अत्यधिक आवश्यकता है कि जो संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसे ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं, उनके प्रकाशन का प्रयत्न किया जाय। यहां मैं ऐसे पु. चरित-ग्रन्थों की एक छोटी सी तालिका दे रहा हूं, जिनका कि अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ है —

१.	आदिपुराण	– सकलकीर्ति रचित.	संस्कृत भाषा.	श्लो० २५००
२	चन्द्रप्रभचरित	"	"	" २०००
३	"	– दामोदर कवि	"	" ४५००
४	पाण्डवपुराण	– वादिराज	"	" ३०००
५	"	यशःकीर्ति	"	" १००००
६	पार्श्वनाथचरित	– सकलकीर्ति	"	" ४५००
७	"	रइधु	अपभ्रंश	" १५००
८	पद्मपुराण	– सोमसेन	संस्कृत	" १००००
९	प्रद्युम्नचरित	– सिद्धकवि	अपभ्रंश	" ५०००
१०	यशोधरचरित	ज्ञानकीर्ति	संस्कृत	" १०००
११		पूर्णदेव	"	" ५००
१२		वासवसेन	"	" २०००
		रइधु	अपभ्रंश	" ३०००
१३	नेमीश्वरचरित	– रइधु	अपभ्रंश	" ३५००
१४	वर्द्धमानचरित	– सकलकीर्ति	संस्कृत	" ३०००
१५	"	असग	"	" २०००
१६	"	विबुध श्रीधर	अप०	" २०००
१७	"	जयमित्रहल	प्राकृत	" १५००
१८	"	रइधु.	अपभ्रंश.	" "
१९	शान्तिपुराण	– सकलकीर्ति	संस्कृत	" ४३००
२०	"	असग	"	" १५००
२१	"	श्रीभूषण	"	" ४५००
२२	सुकौशलचरित	– नेमिकीर्ति	"	" २०००
२३	"	रइधु.	अपभ्रंश	" १०००
२४	सुदर्शनचरित	– नयनन्दि	"	" २५००
२५	"	विद्यानन्दि	संस्कृत	" २०००
२६	"	– सकलकीर्ति	"	" २१००
२७	हरिवंशपुराण	– [illegible]	अपभ्रंश	" [illegible]
		यशःकीर्ति	"	" ७०००
	"	रइधु	"	" ६०००

[illegible]

यहाँ यह आशंका की जा सकती है, कि जब एक ही चरितनायक के ऊपर अनेक आचार्यों या कवियों ने लिखा है, तब सबको कथावस्तु एक ही विषय के चित्रण की क्या आवश्यकता है? इसके समाधानार्थ मैं यह कहना चाहता हूँ कि मूल कथानक सबमें एक होते हुए भी सबकी अपनी-अपनी वैशिष्ट्य है। किसी ने किसी घटना का विशेष रूप से वर्णन किया है, तो किसी ने दूसरी अन्य घटनाओं का। उदाहरण के रूप में मैं भ० महावीर के चरित को आधार बनाकर लिखे गये कुछ ग्रन्थों की विशेषता आपके सामने रखता हूँ —

आचार्य गुणभद्र ने अपने उत्तरपुराण में भ० महावीर का चरित अति संक्षेप में लिखा है. अधिकतर पूर्व भवों का ही वर्णन है। किन्तु असग कवि ने उनका चरित्र एक महाकाव्य के रूप में संस्कृत के नाना छन्दों द्वारा वर्णित किया है। यही कारण है कि उसमें महावीर के विवाह-सम्बन्धी राज्य-वैभव एवं सुखसम्पत्तियों का वर्णन पूरे पाँच सर्गों में किया गया है। इसमें चरित्र-चित्रण की अपेक्षा घटनाचक्रों के वर्णन का आधिक्य दृष्टिगोचर होता है। सकलकीर्ति की रचनाओं के वर्धमान-चरित में शील-चित्रण के साथ ही धार्मिक उपदेशों का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। वे मिथ्यात्व के दुर्विपाक की चर्चा करते हुए कहते हैं — 'वरं हालाहलं पीतं वरं हालाहलं पानं [illegible]। अथवा न मज्जनं श्रेष्ठं मिथ्यात्वेन सजीवितम्'। और इससे भी अधिक मिथ्यात्व की महापाप बताते हुए कहते हैं — 'एकतः सकलं पापं मिथ्यात्वमेकतस्तयोः। तदन्तरं [illegible] सर्वपापेषु ॥' आदि। इसमें कुछ घटना-वर्णन श्वेताम्बर आगमों से भी प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं। रइधू-रचित अपभ्रंश के महावीर-चरित में घटनाओं के सम्बोधनात्मक वर्णनों में जो वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता है, वह अन्यत्र नहीं दिखता। महावीर के सिंह भव में उसे चारणमुनियों द्वारा सम्बोधन का एक नमूना देखिये —

'जग्गु जग्गु रे कोवउ सोवहि, तउ पुण्णें मुणि आवउ जोवहि।
एक्कु जि कोउ कोडी सायर, गयउ भमंत काउ जि सायर ॥'

भ० महावीर के दीक्षा ले जाने पर उनके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए सिद्धार्थ के कथन और उनके भगवान् द्वारा दिये गये उत्तर के चित्रण में तो कवि ने कमाल ही कर दिया है। श्रीधर ने अपने वड्ढमाण-चरिउ में भी इसी प्रकार घटनाओं का बहुत ही सुन्दर एवं हृदय को उद्वेलित करने वाले रूप में वर्णन किया है। समयाभाव से मैं उनके उद्धरण नहीं दे रहा हूँ। इसी प्रकार जयमित्रहल्ल, कुछ नेमि आदि की भी अपनी-अपनी स्थान उनका अपना विशिष्ट महत्त्व रखती हैं।

इन प्रथम या चरित ग्रन्थों को अलग-अलग न प्रकाशित करके एक ही साथ एक ही जिल्द में प्रकाशन होना चाहिए और सबके अलग-अलग अनुवाद न देकर सबके आधार पर चरित-नायक के चरित का चित्रण होना चाहिए। हां, जिस ग्रन्थकार ने जो बात विशेष कही हो, या जिस बात का विशिष्ट-शैली से प्रतिपादन किया हो, उसका यथा-स्थान निर्देश या प्रतिपादना का रहना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त जैन प्रथम या चरित ग्रन्थ सूक्तियों, लोकोक्तियों एवं नीतियों से भरे हुए हैं, उन सबको छांटकर परिशिष्ट में उनका एक साथ संग्रह रहना चाहिए। प्रथम-चरित ग्रन्थों के इस प्रकार के प्रकाशन से प्रबुद्ध पाठक एवं अनुसन्धानकर्ता मूल ग्रन्थ का स्वयं भी संपादन कर सकेंगे और उसके आधार पर अपनी भावनाओं को भी विशिष्ट रूप दे सकेंगे।

प्रथमानुयोग के इन प्रथम-चरित ग्रन्थों के अतिरिक्त करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के भी अनेकों अप्रकाशित ग्रन्थ आज सारे ज्ञान भंडारों में अप्रकाशित पड़े हैं, उन सबके प्रकाशन की भी समुचित व्यवस्था की जाना आवश्यक है।

इस प्रसंग में मैं भारतीय ज्ञानपीठ के संचालकों से भी यह निवेदन करना उचित समझता हूं, कि विगत वर्षों के समान इधर के वर्षों में जैन ग्रन्थों का प्रकाशन बहुत ही अल्प मात्रा में हो रहा है, अतः उन्हें अधिक से अधिक मात्रा में जैन ग्रन्थों का प्रकाशन करना चाहिए. क्योंकि सारे जैन समाज में और देश भर के दि० समाज में वही एक ऐसी संस्था है, जो कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। गत वर्ष वाराणसी में हुई जैन सेमिनार के समय उसके संचालकों की इस ओर ध्यान आकर्षित करने पर मुझे उत्तर मिला था, कि जैन ग्रन्थों की बिक्री कम होती है। मैंने गीता प्रेस गोरखपुर के समान एक मोटर-गाड़ी द्वारा चलित प्रचार की बात कही थी, तो उत्तर मिला था कि यह कार्य बहु-व्यय साध्य है और प्रकाशन संस्थाएं इसके रूप [illegible] होने वाले व्यय के हानि-लाभ या आय-व्यय को भी देखती हैं. उनके उत्तर में मेरा यही कहना है कि एक बार वर्ष-दो वर्ष के लिए वैतनिक प्रचारक द्वारा प्रचार करके समस्त भारत के ५०० स्थानों के जैन मन्दिरों एवं भण्डारों को स्थायी ग्राहक बना लिया जाय, और प्रतिवर्ष प्रकाशित ग्रन्थों को वहां भेजने की व्यवस्था की जाय। आज प्रत्येक औद्योगिक क्षेत्र में प्रचार के आधुनिक साधन अपनाये जाते हैं; फिर आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न जैन समाज जिनवाणी माता एवं दिव्य देशना के प्रचार में क्यों पीछे रहे। [illegible] अन्य धार्मिक लोगों ने प्रचार करने वाली [illegible] की दिशा छोड़ने की जरूरत है, फिर यह किसी भी [illegible] के लिए [illegible] [illegible] आप लोगों से [illegible]।